अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
Peer Reviewed Refereed शोध पत्रिका
ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 02, (April-June 2025)

हिंदी उपन्यासों में कश्मीर: सांस्कृतिक–सामाजिक विविधता व एकता

Sarwat Bano
Enrollment no -GH7860
Ph.D hindi(Research scholar)
Department of hindi
Aligarh muslim university aligarh (uttar pardesh) 202002

शोध-सार:देवी पार्वती और हिमालय की गोद में स्थित कश्मीर, जिसे कभी धरती का स्वर्ग कहा जाता था, इक्कीसवीं सदी के इस भूमंडलीकृत दौर में एक रक्तरंजित रणभूमि में बदल चुका है। आज़ादी से पहले तक यह प्रदेश सामाजिक समरसता, सांस्कृतिक सौहार्द और संगठित जीवन का एक उत्कृष्ट उदाहरण था। किंतु सन् 1980 के दशक के बाद यहाँ की सामाजिक व्यवस्था डगमगाने लगी। कुछ स्वार्थी तत्वों और अलगाववादी शक्तियों ने धर्म और संप्रदाय के नाम पर इस क्षेत्र की सांझी सांस्कृतिक विरासत को खंडित करने का प्रयास कियाऔर दुर्भाग्यवश, वे इसमें सफल भी हुए।इस विघटनकारी प्रक्रिया के चलते दोनों समुदायोंहिंदू और मुस्लिमके बीच अविश्वास की खाई गहराने लगी और सामाजिक एकता में दरारें आ गईं। परिणामस्वरूप, कश्मीर में समय-समय पर सांप्रदायिक दंगे भड़कने लगे, जिनके प्रभाव आज भी इस क्षेत्र के मनोविज्ञान और सामाजिक ताने-बाने पर दिखाई देते हैं।इस संवेदनशील और विघटनकारी परिस्थिति की उपेक्षा साहित्यकारों ने नहीं की। उन्होंने अपने रचनात्मक कार्यों में दोनों समुदायों के बीच उपजे टकराव के बावजूद आपसी सौहार्द, सह-अस्तित्व और सांझी संस्कृति को समाधान के रूप में प्रस्तुत किया है। विशेष रूप से महिला उपन्यासकारों ने बदलते सामाजिक परिदृश्य की करुण स्थिति को अपने उपन्यासों में महसूस कराया है, साथ ही परंपरा, लोकविश्वास और उदारवादी पात्रों के माध्यम से कश्मीर की गंगा-जमुनी तहज़ीब को जीवित रखने का सार्थक प्रयास भी किया है।यह आलेख विशेष रूप से उन महिला उपन्यासकारों के रचनात्मक योगदान पर केंद्रित है, जिनका मूल संबंध कश्मीर से रहा है और जिन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से इस धरती की पीड़ा, संस्कृति और आशा को स्वर दिया है।

बीजशब्द: संस्कृति, सभ्यता, समरसता, सांस्कृतिक विरासत, गंगा-जमुनी तहज़ीब, अलगाववाद, सामाजिक विघटन, लोकविश्वास, उपन्यास साहित्य, सद्भाव,आशावादी दृष्टिकोण, सांझी संस्कृति, करुणानुभूति।

मूल आलेख : कश्मीर, अपनी भौगोलिक सुंदरता के लिए पूरे विश्व में प्रसिद्ध है, जिसे ऋषि कश्यप के आश्रम पर बसा हुआ माना जाता है। कश्मीर की सुंदर वादियाँ किसी भी सहृदयी मनुष्य के मन को मोहने की क्षमता रखती हैं, जिसके कारण इसे धरती का स्वर्ग कहा जाता है। कश्मीर के संदर्भ में कहा जाता है: 'गर फ़िरदौस बर रुये ज़मी अस्त/हमी अस्तो, हमी अस्तो, हमी अस्त' अर्थात धरती पर कहीं स्वर्ग है तो यहीं है, यहीं है, यहीं है। लेकिन भौगोलिक सौंदर्य के इतर कश्मीर का अपना एक स्वर्णिम

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 02, (April-June 2025)

सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक इतिहास भी रहा है। ऋषि कश्यप की यह धरती विद्या का उत्कृष्ट केंद्र रही है। इसकी प्राचीन विद्या परंपरा, संस्कृत की ज्ञान परंपरा का सर्वोच्च उदाहरण प्रस्तुत करती है। प्राचीनकाल से लेकर मध्यकाल तक विभिन्न विषयों के अग्रणी विद्वानों की एक लंबी सूची है जिन्होंने भारतीय संस्कृति को निरंतर समृद्ध किया है। इनमें पंचतंत्र के रचयिता विष्णुशर्मा, नागसेन, वाग्भट, भामह, मम्मट, कैय्यट, अभिनवगुप्त, आनंदवर्धन, क्षेमेंद्र, कल्हण, जल्हण, शारंगदेव इत्यादि शामिल हैं। आज भी हमारा समाज और साहित्य इनकी दी हुई रोशनी में अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है।

इसी साहित्यिक परंपरा के बरक्स लोक संस्कृति में ललद्यद (लल्लेश्वरी) आती हैं, जिन्होंने कश्मीरी संस्कृति में मानवतावाद का सूत्रपात किया। ललद्यद को वाचिक इतिहास के अंतर्गत लोक जीवन में बड़ी बहन का स्थान दिया गया है। लल्लेश्वरी के 'वाख' आज भी कश्मीर के ग्रामीण इलाकों में लोगों को कंठस्थ हैं। ललद्यद की ही शिष्य परंपरा में आगे चलकर नुंद ऋषि (नंद) हुए। जहाँ एक ओर लल्लेश्वरी ने हिंदू समाज में सदियों से व्याप्त उन रीतियों और जड़ परंपराओं पर प्रहार किया जो अप्रासंगिक हो चुकी थीं, तो दूसरी ओर उनके मुसलमान शिष्य नुंद ऋषि ने जनसाधारण की भाषा में अपने समाज को मुल्ला-मौलवियों के प्रभावों से सजग करते हुए वास्तविक अध्यात्म की ओर ले जाने का प्रयास किया। इन दोनों ने धर्म, जाति, मजहब, मत-मतान्तर से दूर रह कर मनुष्य और मानवता को सर्वोपरि माना। कश्मीरी समाज पर इनका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा और इससे एक ऐसी संस्कृति का निर्माण हुआ जिसे 'कश्मीरियत' कहा गया। इसी कश्मीरियत को कालांतर में कश्मीर की 'सांझी संस्कृति' कहा जाने लगा।

कश्मीर घाटी, अपनी बेजोड़ प्राकृतिक सुंदरता के लिए जिस तरह विख्यात है, ठीक उसी तरह यह अपनी गहन सांस्कृतिक विरासत के लिए भी पहचानी जाती है। हमारे प्राचीन ग्रंथों में भी इसे 'स्वर्ग' की उपमा से नवाज़ा गया है। कश्मीर ने हमेशा से इतिहास, साहित्य, संस्कृति, सभ्यता, भाषा और दर्शन के क्षेत्र में असाधारण समृद्धि का प्रदर्शन किया है। सदियों के दौरान इसने विभिन्न सभ्यताओं और धर्मों को खुले दिल से अपनाया और उन्हें अपने भीतर समाहित किया, जिसके परिणामस्वरूप हिंदू, मुस्लिम और बौद्ध धर्मों के समागम से मानवतावाद, धर्मनिरपेक्षता और सहिष्णुता के मूल्यों पर आधारित एक अनूठी, मिली-जुली संस्कृति का विकास हुआ।[i] यह मिली-जुली संस्कृति, जिसे हम 'सांझी संस्कृति' कहते हैं, चंद्रकांता, संजना कौल, क्षमा कौल और मीरा कांत जैसे लेखिकाओं के कश्मीर-केंद्रित उपन्यासों में जीवंत रूप से अभिव्यक्त हुई है। ये रचनाएँ 'कश्मीरियत' के मर्म को अपने भीतर समेटे हुए हैं और उसकी गर्माहट व खुशबू से हमें रूबरू कराती हैं। कश्मीर के संदर्भ में देखें तो यहाँ की सांझी संस्कृति की विरासत सचमुच अद्वितीय है, जहाँ शैव, बौद्ध और इस्लाम - तीनों धर्मों की संस्कृतियाँ एक-दूसरे में मिलकर एकाकार हो गई हैं।

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 02, (April-June 2025)

चंद्रकांता अपने उपन्यास 'ऐलान गली ज़िंदा है' में लिखती हैं: "फागुन में शिवरात्रि के मौके पर थोड़ा सा फर्क आ जाता। फिर भी 'शिवरात्रि' पंद्रह दिन धूम-धड़ाके से मनती। एक तो शिवरात्रि' उस पर सलाम के दिन ईद। दोनों उत्सवों पर मेल-मिलाप और मुबारकबाद देने की प्रथा को बरकरार रखना जरुरी था।"[ii] यह एक-दूसरे को मुबारकबाद देने की ज़रूरी प्रथा ही उस 'कश्मीरियत' का आधार बनी, जिसके आँचल तले दोनों समुदायों के लोग सदियों तक एकता के सूत्र में पिरोए रहे और सामाजिक सौहार्द को अक्षुण्ण बनाए रखा। चाहे वह हिंदू, सिख, बौद्ध या मुसलमान, किसी भी धर्म का त्योहार क्यों न हो, सभी उसमें शामिल होते और प्रेम से मिलते हुए एक-दूसरे को शुभकामनाएँ देते। वे एक-दूसरे के सुख-दुःख में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते थे।

कश्मीर में ऋषि और सूफ़ियों की एक साझा परंपरा फलती-फूलती रही है। इन्हीं के साथ, शैव और बौद्ध दर्शन का गहरा प्रभाव भी यहाँ के जनमानस पर पड़ा। सभी धर्मों के लोग सह-अस्तित्व की भावना के साथ पीढ़ियों से रहते चले आए थे। कश्मीरियों ने अपने-अपने धर्म का सम्मान करते हुए भी कभी धार्मिक कट्टरता को अपने बीच आने नहीं दिया। इसी सामाजिक सौहार्द को चंद्रकांता अपने उपन्यास 'कथा सतीसर' में व्यक्त करते हुए लिखती हैं: "छोटा आदमी हो या बड़ा 'सलाम' के दीन बधाई देने वालों के हाथों में अपनी हैसियत के अनुसार दान दक्षिणा जरुर देगा। सलाम तो देने का दिन है। पूरा दिन बधाई देने वालों का ताता लगा। दोस्त, नातेदार, हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, जो भी दोस्तों में शामिल थे, आते रहे।"[iii]

कितने ही बुरे दौर आए, चाहे वह सिकंदर बुतशिकन द्वारा हिंदुओं और उनके धर्म को नष्ट करने का समय हो या अफ़गानों की क्रूरता का युग। लेकिन जैनुल आबदीन (बड़शाह) जैसे शासकों, तो कभी तेगबहादुर और महाराजा रणजीत सिंह जैसे धर्म के रक्षकों ने यहाँ की जनता की रक्षा की और वहाँ की संस्कृति को बचाए रखने का अथक प्रयास किया। यही कारण है कि वहाँ के लोग अलग-अलग धर्मों के होते हुए भी मैत्री भाव और समन्वय की लोक संस्कृति में घुल-मिलकर जीते रहे। यही उनकी 'कश्मीरियत' है, जिस पर पूरा कश्मीर गर्व करता है: "ताता ने गर्व से जोड़ दिया कि शिवरात्रि ठेठ हिन्दू पर्व होते हुए भी अपनी वादी में हिन्दू, मुसलमान और सिक्खों का मिला जुला महापर्व बन गया है। कभी शायद यह मज़बूरी रही हो, पर डोगरा राज्य में भी हमने 'सुन्नीपुतल', 'वागरबाह' की पूजा बरकरार रखी, यह हमारी धार्मिक सहिष्णुता का प्रमाण है और यही हमारी कश्मीरियत है।"[iv]

देश को आज़ादी मिलने से पहले तक, शासन द्वारा जनता पर जो भी ज़्यादतियाँ हुईं, चाहे वह किसी भी काल-खंड में हों, कश्मीरियों ने उसमें कभी सहयोग नहीं दिया। भारत विभाजन के समय, जब देश के विभिन्न भागों में हिंदू-मुस्लिम समुदायों के बीच सांप्रदायिक दंगे भड़क उठे और दोनों धर्मों के लोग मारे गए, तब भी कश्मीर की जनता ने धार्मिक सहिष्णुता का अद्भुत परिचय दिया। उस विकट परिस्थितियों में भी वे एक-दूसरे का सहारा बने। कश्मीरी अवाम ने भारतवर्ष के सामने 'कश्मीरियत' की

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 02, (April-June 2025)

एक ऐसी मिसाल पेश की, जिसकी प्रशंसा करते हुए महात्मा गांधी ने कहा था: "जब हिन्दुस्तान में चारों तरफ अँधेरा छाया हुआ है। तब सिर्फ कश्मीर ही अकेली उम्मीद बची है।"[v] गांधी ने सच ही कहा था, क्योंकि उस संकटपूर्ण समय में देश के अन्य भागों में दोनों समुदायों (हिंदू-मुसलमान) के बीच गहरा अविश्वास उत्पन्न हो चुका था और वे एक-दूसरे को अपना दुश्मन समझने लगे थे। परंतु कश्मीर में दोनों कौम के लोग शांति के साथ रहते चले आए। उन्होंने कबाइली हमले के वक्त भी आपसी सद्भाव बनाए रखा।

यह वही पावन भूमि है जहाँ से जिन्ना को उलटे पाँव लौटना पड़ा था, जब उन्होंने मुसलमानों को खुदा का वास्ता देकर एक कलमा और एक झंडे के नीचे आने की बात की। इसके पीछे वही 'कश्मीरियत' थी जो यहाँ के जन-जीवन में गहराई से समाई हुई दिखाई पड़ती है। हिंदू, शैव, बौद्ध और मुस्लिम धर्मों की तहज़ीब को आत्मसात करने वाली इस संस्कृति और समाज ने सियासत और बर्बर ताकतों का जितना दंश सहा है, उतना शायद ही देश के अन्य किसी भाग में सहा गया होगा। यहाँ का समाज सबसे अधिक धर्मनिरपेक्ष समाज रहा है, इसका प्रमाण कश्मीर की सामाजिक संरचना में स्पष्ट रूप से मौजूद है। कश्मीर के लोकविश्वास, यहाँ के व्रत, पर्व, त्योहार, और उन्हें मनाने के तौर-तरीके के साथ ही रहन-सहन व वेशभूषा में भी उस सांझी संस्कृति का परिचय मिलता है जिसे 'कश्मीरियत' कहा जाता है। 'ऐलान गली ज़िंदा है' उपन्यास में चंद्रकांता लिखती हैं: "ब्राह्मण वर्ग ही नहीं अनवर मियाँ, मौलवी साहब, गुलाम नबी आदि भी सदियों से चले आते विश्वास में दरार बरदाश्त नहीं कर सकते थे। हिन्दू-मुसलमान दोनों की दृष्टि में जो एकरूपता थी, उसका कारण मास्टरजी वादी के इतिहास में खोजते हैं। वे कहते हैं, 'चौदहवीं शदी से पहले तो वादी में हिन्दूधर्म, बौद्धधर्म व शैव मत प्रचलित थे। इस्लाम के आगमन पर हिन्दुओं का मत-परिवर्तन कर उन्हें मुसलमान बनाया गया। यों दोनों में कोई मूल भेद नहीं है, तभी तो खान-पान, रहन-सहन, लगभग एक जैसा है और कहीं-कहीं तो दोनों ईश्वराधना भी एक ही जगह करते हैं, शाहे-हमदान और काली देवी का मंदिर क्या एक ही जगह पर स्थित नहीं है?"[vi]

कश्मीर में सांझी संस्कृति को बनाए रखने में वहाँ के भौगोलिक और स्थापत्य कलाओं का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, क्योंकि भौगोलिक परिस्थितियाँ भी किसी संस्कृति के विकास में अपनी भूमिका निभाती हैं। स्थापत्य कलाओं में मार्तंड मंदिर 'कश्मीरियत' का एक शानदार परिचय प्रस्तुत करता है, तो हारी पर्वत भौगोलिक रूप से धार्मिक और सामाजिक सौहार्द का प्रतीक है, जहाँ अलग-अलग धर्म समूह के लोग एकत्रित होते हैं: "झील डल से गुजरते हुए एक तरफ हारी पर्वत दिखाई पड़ता, दूसरी तरफ शंकराचार्य पर्वत। यों तो अनवर मियाँ हारी पर्वत की मस्जिद में नमाज के लिए कभी-कभी जाते थे महीप भी गुरूद्वारे में मत्था टेकने जाता। हारी पर्वत पर मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा तीनों बने हैं।"[vii]

कश्मीर के अनेक मुस्लिम परिवारों की वंशावली की हिंदू पृष्ठभूमि है। कई परिवारों के आपस में गहरे रिश्ते हैं; अंतर्धर्मीय शादियाँ भले अधिक न होती रही हों, परंतु पारिवारिक उत्सवों, प्रतिभोजों,

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 02, (April-June 2025)

समारोहों एवं अन्य संस्कारों में दोनों समुदाय के लोग शामिल होते रहे हैं। चंद्रकांता अपने उपन्यास 'कथा सतीसर' में 'दोदु मोज्य' परंपरा का उल्लेख करती हैं, जिसमें मुसलमान स्त्रियाँ हिंदू बच्चों को अपना दूध पिलाकर 'दोदु मोज्य' (दूध-माँ) कहलाती थीं। यह परंपरा भारतवर्ष के अन्य भागों में शायद ही देखने को मिलती है। यह परंपरा कश्मीर में सामाजिक सद्भावना का एक अनमोल उदाहरण है, जहाँ दीन-धर्म आड़े नहीं आता और मुस्लिम स्त्रियाँ हिंदू बच्चों की जीवनदायनी माँ बन जाती हैं। "सनातनधर्मी कौल भी सोचते हैं कि कभी सुभान भट्ट और गुलाम मुहम्मद पंडित उनके ही हमजात रहे होंगे। सिकंदर बुतशिकन और अफगान तुर्कों के जुल्मोसितम से धर्म बदलने पर मजबूर हो गए, पर थे तो उन्हीं के भाई-बंद।"[viii] यह वही कश्मीर है जहाँ संत लल्लेश्वरी और नुंद ऋषि ने धर्म और जाति के भेद को मिटाते हुए मानवता को सर्वोपरि माना। लल्लेश्वरी हिंदू-मुसलमानों के बीच बढ़ती खाई को देखते हुए उन्हें शिव को जानने का संदेश देती हैं: "शेव छुय थलि-थलि रोज़ान मो जान क्योन हयोंद त मुसलमान, त्रुखई छुख पननुई जान परजान, सोई छय सहिबस सत्य असली जान।।।"[ix] (अर्थात: शिव सबमें व्याप्त है। हिंदू-मुसलमान में कोई भेद न समझो। पहले अपने-आपको पहचानो, वही शिव के साथ असली पहचान होगी।)

यहाँ ऋषि-सूफ़ियों की परंपराओं के साथ शैवमत का भी अस्तित्व रहा; कश्मीरियों ने इन तीनों मतों को सहर्ष आत्मसात किया। लोगों ने किसी भी परंपरा को छोटा बताए बिना तीनों को अपने जीवन का हिस्सा बनाया। कश्मीरी मानस के निर्माण में इन संत और ऋषियों की अहम भूमिका रही है। दोनों समुदाय के लोग एक-दूसरे की अहमियत को पहचानते थे। सदियों से वे एक-दूसरे की आदत बने, एक-दूसरे पर निर्भर थे। चाहे जमींदार बल्जू हो या काश्तकार सुल्जू, दोनों अपनी जगह ठीक थे और लिहाज़ व मोहब्बत के साथ रहते चले आए थे।

यों तो कश्मीर में 1931 से ही सांप्रदायिक घटनाएँ घटने लगी थीं, परंतु कश्मीरी जनमानस पर इसका बहुत अधिक प्रभाव नहीं पड़ा था। सांझी संस्कृति और परंपरा में पली-बढ़ी कश्मीरी अवाम ने अपने आपको एकता के सूत्र में बांधे रखा। परंतु देश को स्वतंत्रता मिलने के बाद कश्मीर में परिस्थितियाँ बिगड़ने लगीं। जो कश्मीर कभी गंगा-जमुनी संस्कृति का केंद्र रहा था, जहाँ हिंदू और मुसलमान मैत्री भाव से रहते चले आए थे, उसी कश्मीर को 1980 आते-आते आतंकवादियों ने रक्तरंजित कर दिया और हिंदू-मुसलमानों की सांझी विरासत रही 'कश्मीरियत' चूर-चूर होकर बिखरने लगी। जिस 'सांझी संस्कृति' पर कश्मीरियों और पूरे भारतवर्ष को गर्व होता था, उसी की छाती में मज़हब के नाम पर सांप्रदायिकता और आतंकवाद का खंजर घोंपकर उसे लहूलुहान कर दिया गया। इसका भीषण परिणाम 19 जनवरी 1990 को लाखों कश्मीरी हिंदुओं के विस्थापन के रूप में सामने आया। कश्मीर में जगह-जगह सांप्रदायिक घटनाओं को अंजाम दिया जाने लगा। मीरा कांत अपने उपन्यास 'कोई था कहीं नहीं-सा' में अंबरनाथ के माध्यम से इस दुखद तथ्य को उजागर करती हैं। वह कहता है: "पहले फ्यूडल ऑटोक्रेसी एक चुनौती थी। फिर कबाइली हमले ने चुनौती पेश की।।। अब अपने घर में मजहब के नाम

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 02, (April-June 2025)

पर तो हम बट ही रहे हैं। हम जिस कश्मीरियत की बात करते हैं ये दंगे क्या उसकी पीठ पर लात नहीं है।"[x]

इन महिला उपन्यासकारों ने जहाँ एक ओर 'सांझी संस्कृति' के निर्माण में भूमिका निभाने वाले कारकों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है, तो दूसरी तरफ उन कारणों को भी उजागर किया है जिन्होंने सांझी संस्कृति में शिगाफ़ (दरार) डाला। इसके पीछे इन लेखिकाओं ने नेताओं के उन कार्यों को जिम्मेदार ठहराया है जिनके कारण लोगों के दिलों में ज़हर घुल गया और एक रची-बसी संस्कृति मज़हबी ताकतों के नाम पर टूट गई। कश्मीर की 'सांझी संस्कृति' की विरासत को विघटित करने में सबसे बड़ा हाथ आतंकवादियों व मज़हबी लोगों द्वारा फैलाई गई उस धार्मिक विद्वेष का है, जिसके कारण कश्मीरी समाज में व्याप्त आपसी सौहार्द की साँसें टूटने लगीं।

संजना कौल के उपन्यास 'पाषाण युग' में इस तथ्य को उजागर किया गया है कि कैसे धर्म और जिहाद के नाम पर कश्मीरी युवाओं के हाथों में हथियार थमा दिया जाता है और वे अपने ही पड़ोसियों पर कहर बरपाते हैं तथा वे हिंदुओं को अपना दुश्मन समझने लगते हैं। एक पूरी की पूरी युवा पीढ़ी को इस तरह गुमराह कर दिया गया है। न उन्हें कश्मीर के इतिहास की सही जानकारी दी जाती है न संस्कृति की; उनके मन-मस्तिष्क में धर्म के नाम पर सांप्रदायिकता का ज़हर घोल दिया जाता है। एक आतंकवादी की मौत पर मुस्लिम समाज के कुछ लोग हलवा बांटते हैं, पाकिस्तान जिंदाबाद के नारे लगाते हैं। उसे शहीद का दर्जा देते हैं। अंजलि अपने अम्मा से कहती है: "मैंने तो नजीर की बेटी से सुना है। वह कह रही थी, वह शहीद हुआ है। उसकी मौत हम सबके लिए फक्र की बात है। इस पर गम नहीं होना चाहिए। ख़ुशी मनानी चाहिए।"[xi] धीरे-धीरे हिंदू-मुसलमानों के दिलों में एक दूसरे के लिए नफ़रत भरता जा रहा था। इस तरह की घटनाओं का समाज पर दूरगामी प्रभाव पड़ा और हिंदू समाज में दहशत फैलने लगी।

सामान्य सी घटनाओं को मज़हबी रंग देकर दोनों समुदायों के बीच अविश्वास पैदा किया गया। आतंकवादियों ने वहाँ के मंदिरों में घुसकर उन्हें नष्ट-भ्रष्ट किया। वैसे तो उन्होंने मुसलमानों के पूजा स्थलों को भी नहीं छोड़ा और सांझी संस्कृति को उखाड़ फेंकने का प्रयास किया। परंतु अब कश्मीरी अवाम इसके पीछे बैठी ताकतों को पहचानने लगी है। बृज मोहन जी सज्जाद को समझाते हुए कहते हैं: "मेरी बात सुनो सज्जाद। यह यहाँ के लोगों की बोली नहीं है। यह उन अड्डों का ज़हर है, जहाँ लोगों को इकट्ठा करके इसके इंजेक्शन दिए जाते हैं। देख लेना, अभी हालत और बिगड़ जाएगी।"[xii]

यहाँ की सांझी सांस्कृतिक विरासत को तोड़ने में धर्म के सौदागरों ने कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी। हिंदुओं को कश्मीर से निष्कासित कर, उनकी सांस्कृतिक पहचानों को मिटा कर, उनके वापस आने की उम्मीदों पर भी पानी फेर दिया गया। लेकिन आज भी एक आम कश्मीरी अपने सामाजिक सौहार्द को बनाए रखने के लिए यही कहता है- अनवर मियाँ कहते हैं: "मैं अपने घर में अपनी इबादत

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 02, (April-June 2025)

करता हूँ वो अपने घर में अपना पूजा-पाठ। घड़ी दो घड़ी मिल-बैठकर हम अपना सुख-दुःख बाँट लेते है। यह हमें भी अच्छा लगता है, उन्हें भी। फिर पीढ़ियों से घरों में आना जाना है।"[xiii]

कश्मीर घाटी में अलगाववादी, नफ़रत और सांप्रदायिक अंधियारे के बीच प्रेम और सौहार्द की रोशनी अभी भी बची हुई है। तभी तो वहाँ के साधारण लोग वादी में अमन और शांति की राह देख रहे हैं। नंदन, प्रेम से पूछता है कि "क्या मैं मान लूँ, आप भी उम्मीदें खो चुके हैं? मान चुके हैं कि हमारी नुंदऋषि और ललद्यद की ऋषि-सूफी परम्परा में दरारें पड़ चुकी है।" तब प्रेम कहता है: "हमारे दोस्तों के दिलों में अभी दरारें नहीं पड़ी नंदन! तुमने एहसान मलिक का प्यार महसूस नहीं किया क्या? हाँ सियासत ने काफी नुकसान किया हमारा। इसे हमारा दुर्भाग्य ही समझ लो।"[xiv] आज भी कश्मीर में प्रेम जैसे हिंदू तो अनवर मियाँ जैसे मुसलमान उपस्थित हैं जो हिंदू-मुस्लिम सह-अस्तित्व और ऋषि-सूफ़ी परंपरा अर्थात सांझी संस्कृति को बनाए रखने में विश्वास करते हैं। अतः कश्मीर की सांझी संस्कृति अलगाववादी चेतना और सांप्रदायिक जड़ता के विरुद्ध एक ज्ञानात्मक संवेदना है, जो हर काल-खंड में अविरल प्रवाहमान रही है। कश्मीर केवल भौगोलिक सुंदरता का प्रतीक नहीं, बल्कि सह-अस्तित्व, सांस्कृतिक समरसता और मानवतावाद की सजीव मिसाल रहा है। यहाँ ऋषि-सूफी परंपरा, शैव, बौद्ध और इस्लामी संस्कृति का ऐसा समन्वय दिखाई देता है, जिसने 'कश्मीरियत' नामक अद्वितीय सांझी संस्कृति को जन्म दिया। विभिन्न महिला उपन्यासकारों — जैसे चंद्रकांता, संजना कौल, क्षमा कौल और मीरा कांत — ने अपने उपन्यासों के माध्यम से इस संस्कृति की गहराई, उसकी करुणा, और उसके विघटन के पीछे छिपी राजनीतिक व सांप्रदायिक साजिशों को अत्यंत संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत किया है। इन उपन्यासों में जहाँ एक ओर कश्मीर की सदियों पुरानी साझा विरासत को संरक्षित रखने का भाव दिखाई देता है, वहीं दूसरी ओर आतंकवाद, धार्मिक कट्टरता और राजनीति के कुटिल खेल के कारण उत्पन्न विघटन और पीड़ा को भी मुखरता से स्वर दिया गया है। इन रचनाओं के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि भले ही राजनीतिक शक्तियों ने 'कश्मीरियत' को तोड़ने का प्रयास किया हो, लेकिन आम कश्मीरी अब भी उसमें आस्था रखता है। वह अपने सह-अस्तित्व, सहिष्णुता और प्रेम की परंपरा को जीवित रखना चाहता है। इस प्रकार, कश्मीर की सांझी संस्कृति किसी एक धर्म या समुदाय की नहीं, बल्कि समस्त मानवता की साझा धरोहर है, जो आज भी साहित्य और जनमानस में उम्मीद की लौ के रूप में जीवित है। यही वह सांस्कृतिक चेतना है जो तमाम विघटनकारी शक्तियों के बावजूद कश्मीर को जोड़ती रही है और आगे भी जोड़ सकती है।

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 02, (April-June 2025)

संदर्भ–

[i] भारतेश कुमार मिश्र,संस्कृति (कश्मीर विशेषांक) पत्रिका, अंक 19,पृ. 5

[ii] चन्द्रकान्ता, ऐलान गली जिंदा है,राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली, 2015, पृ.99-100

[iii] चन्द्रकान्ता, कथा सतीसर, राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली,2013, पृ.167

[iv] वही, पृष्ठ 165

[v] मीरा कान्त,कोई था कहीं नहीं-सा, वाणी प्रकाशन,दिल्ली, 2009, पृ. 124

[vi] चन्द्रकान्ता, ऐलान गली जिंदा है, राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली, 2015,पृ.114

[vii] वही, पृष्ठ 47

[viii] चन्द्रकान्ता, कथा सतीसर, पृष्ठ 59

[ix] चन्द्रकान्ता, ऐलान गली जिंदा है, पृष्ठ143

[x] मीरा कान्त, कोई था कहीं नहीं-सा', पृष्ठ 152

[xi] सजना कौल, पाषाण युग, आधार प्रकाशन, हरियाणा, 2003, पृ.31

[xii] वही, पृष्ठ 32

[xiii] चन्द्रकान्ता, ऐलान गली जिंदा है, पृ.51

[xiv] चन्द्रकान्ता, कथा सतीसर, पृ.407